असंतोष और आलोचना के बीच आम चुनाव

प्रफुल्ल कोलख्यान

जनतंत्र में जनप्रतिनिधियों के चुनाव का अपना महत्त्व होता है। 2014 में लोक सभा का आमचुनाव होना है। सब की निगाह इस चुनाव पर लगी हुई है। चुनाव के माध्यम से ही जनता अपनी पसंद के उम्मीदवारों का चयन कर जनतंत्र में अपनी भागीदारी पूरा करता है। चुनाव में उसके किये फैसले का उसकी जिंदगी के बहुत सारे मसलों पर सीधा और प्रभावकारी असर पड़ता है। यह ठीक है कि चालू जनतांत्रिक व्यवस्था में असंतोष और आलोचना के कई जायज बिंदु हैं, फिर भी इसका का कोई विकल्प नहीं है। इसलिए आम चुनाव के अवसर पर इस जनतांत्रिक व्यवस्था कि विभिन्न पहलुओं पर गंभीरतापूर्वक सोचने की जरूरत है।

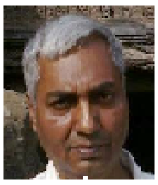

क्या कहते हैं?

जनतंत्र का प्राण बहुमत है। जो बहुमत जनतंत्र का प्राण होता है वह मत न तो निरंकुश होता है और न निरपेक्ष ही हो सकता है। इस बहुमत को संवैधानिक प्रावधानों, विवेक और मानवीय मूल्यों की सापेक्षता के अधीन ही रहना होता है। भीड़तंत्र और जनतंत्र में यही तो अंतर है। बहुमत का अर्थ बहुसंख्यक का मत नहीं होता है। निरंकुश और निरपेक्ष सत्ता बहुमत के बदले बहुसंख्यक के मत का हल्ला मचाकर जनतंत्र को भीड़तंत्र में बदल देती है। इस तरह जिस चिराग से घर रौशन होना तय होता है उसी चिराग से घर में आग लग जाती है।

भारतीय जनतंत्र की जड़ें बहुत गहरी हैं। हालाँकि, यह भी सच है कि इसकी जड़ें जितनी गहरी हैं इसके फल भी उतनी ही ऊँचाई पर लगते हैं! कई बार वहाँ तक सब की पहुँच नहीं बन पाती है। जैसा कि पहले भी संकेत किया गया है, इस जनतांत्रिक व्यवस्था की कई सीमाएँ हैं, जिनके प्रति लोगों के मन में भारी असंतोष भी है और जिनकी कड़ी आलोचना भी की जा सकती है। बावजूद इसके हमारा जनतंत्र हमारे लिए सबसे बड़ा आश्वासन भी है। इसलिए किसी भी तरह से इसके महत्त्व को कम करके आँकना ठीक नहीं है। जो लोग इसी जनतंत्र की प्रक्रिया के सहारे सत्ता के शिखर पर पहुँचने की कोशिश करते और पहुँचते हैं, वे लोग भी कभी अनजाने और कभी जानबूझकर शरारतन, इसकी खिल्ली उड़ाते हैं। यह ठीक नहीं है। असल में, हमारा सत्ता समूह जनतंत्र की प्रक्रिया को सत्ता हासिल करने से सीमित करके देखने के बौद्धिक दिवालियेपन की तरफ बहुत तेजी से बढ़ रहा है। जनतंत्र की प्रक्रिया में सत्ता हासिल करने का माध्यम निर्वाचन होता है। जाहिर है, जब जनतंत्र की प्रक्रिया को सत्ता हासिल करने से सीमित कर दिया जायेगा तो जनतंत्र निर्वाचन की प्रक्रिया में सिमट कर रह जायेगा। ऐसे में स्वाभाविक रूप से वोटबैंक की राजनीति अपनी पूरी विद्रूपता के साथ चल निकलती है।

भारत गणराज्य की आंतरिक संरचना में परिलक्षित हो रहे परिवर्त्तन के संकेत और जनतंत्र के बदलते स्वरूप के कारण एक नई हलचल है। ऐसे में लोकसभा के लिए होनेवाली चुनावी प्रक्रिया के महत्त्व को समझे जाने की जरूरत है। इस पर बात करने के लिए जरूरी है कि भारत गणराज्य की आंतरिक संरचना में परिलक्षित हो रहे परिवर्त्तन के संकेत और जनतंत्र के बदलते स्वरूप को समझने की कोशिश की जाये। भारतीय गणराज्य का मूल स्वभाव संघात्मक है। इसकी नागरिकता भारतीय गणराज्य के द्वारा प्रदत्त और इसके नागरिक अधिकार की गारंटी भारतीय गणराज्य के द्वारा ही संरक्षित है। इसके साथ ही भारतीय गणराज्य संघात्मक भी है। नागरिक

अधिकार समेत कानून व्यवस्था राज्यों के अधीन है। इधर यह प्रवृत्ति देखने में आ रही है कि स्थानिकता के दबाव में अपने राज्य से बाहर रह कर छोटे-मोटे रोजगार और खुदरा कारोबार में लगे लोगों को निकृष्टतम अर्थों में अपने 'बाहरी' होने का भारी दबाव और दंश झेलना पड़ रहा है। राज्य सरकारें ऐसे 'बाहरी' लोगों की सामाजिक-आर्थिक समस्या से लगभग उदासीन रहती हैं या फिर स्थानीयता की ओर झुकी रहती हैं। इसका प्रमुख कारण चुनाव जीतने की तात्कालिकता का दबाव होता है। चुनाव जीतने की तात्कालिकता के भँवर में सारे राजनीतिक दल फँसे हुए हैं। जिनका दावा अपने राष्ट्रीय होने का है वे भी अपने चरित्र और व्यवहार में कोई भिन्न नहीं हैं। भारतीय गणराज्य के विन्यास को चुनाव जीतने की तात्कालिकता से गहरे झटके लग रहे हैं। इस बार के आम चुनाव में बदलाव की इस भाषा को पढ़ा जाना चाहिए। आज का हासिल भारत राष्ट्रवाद के उपकरणों से निर्मित है। बीसवीं सदी में राष्ट्रवाद का जोर था जिसके तहत राष्ट्र एक संगठित इकाई की तरह आचरण करता था। इक्कीसवीं सदी में राष्ट्रवाद को बाजारवाद बहुत तेजी से विस्थापित कर रहा है। जाहिर है राष्ट्र सिकुड़ रहा है और बाजार फैल रहा है। राष्ट्र के सिकुड़ने और बाजार के फैलने के इस संक्रमणकाल में राष्ट्रीय संरचना में अंदर-ही-अंदर बदलाव हो रहा है। यह माना जाना चाहिए कि राष्ट्र के सिकुड़ने और बाजार के फैलने से भारतीय गणराज्य की संघात्मकता में नये अंतर्विरोध और अंतर्घात की सक्रियता बढ़ रही है। अंतर्विरोध और अंतर्घात की इस बढ़ती हुई सक्रियता का ही नतीजा है कि दुनिया एक ध्रुवीय होती जा रही है और हमारा राष्ट्र अंदर से बहुध्रुवीय होता जा रहा है। किसी भी तरह के विभ्रम में पड़े बिना यह मानना ही होगा कि ऐतिहासिक रूप से बनी भारतीय बहुलात्मकता से यह नवविकासमान भारतीय बहुध्रुवीयता भिन्न प्रकार की ही नहीं, बल्कि विरोधी स्वभाव की भी है। ऐतिहासिक रूप से बनी भारतीय बहुलात्मकता में सांस्कृतिक और गहरे अर्थ में राजनीतिक प्रकृति की आंतरिक एकता और बाहरी अनेकात्मकता की स्थिति रही है, जबकि इस नवविकासमान भारतीय बहुध्रुवीयता में सांस्कृतिक और गहरे अर्थ में राजनीतिक प्रकृति की आंतरिक अनेकात्मकता और बाहरी एकता की स्थिति बन रही है। भारतीय गणराज्य ऊपर से एक दिखता हुआ भी तेजी से आंतरिक बिखराव की ओर बढ़ रहा है।

बिना किसी आदर्श के, बिना किसी नायक के किसी सामाजिकता की गत्यात्मकाता में आत्मीयता का कोई प्रसंग नहीं जुड़ता है। इसका एक कारण यह है कि आदर्श और नायक से ही लोगों के मनोजगत का तादात्मीयकरण संभव होता है। आज हमारे पास जो हैं, वे सिर्फ छलनायक हैं। वे उसी को बेहिचक छल लेते हैं जिनका उनके साथ तादात्मीयकरण होता है। यह सभ्यता और संस्कृति जैसे अंतिम क्षण में पहुँच रही है — दबे पाँव, धीरे-धीरे । इस अंतिम क्षण में अँधेरा बहुत घना है। जोरावरों के जोर से चलनेवाली यह सभ्यता जनतंत्र की चाहे जितनी उपेक्षा करे, अंतिम क्षण में बचायेगा इसे यही जनतंत्र।

ऐसे संरचनागत माहौल में 2014 में लोकसभा के लिए आम चुनाव होना है। हर बार के आम चुनाव का अपना महत्त्व होता है। इस बार के आम चुनाव का भी अपना महत्त्व है। निर्वाचन की राजनीतिक प्रक्रिया की गति तेज हो रही है। दल अपना-अपना कमान सम्हाल रहे हैं। गोटियाँ बिछाई जा रही है। संसदीय जनतंत्र के ढाँचे में राष्ट्रपति प्रणाली की आत्मा प्रवेश इस चुनाव में साफ-साफ दिख रहा है। बहुदलीय व्यवस्था द्विदलीय व्यवस्था की तरफ बढ़ रही है। ऐसा नहीं कि पहले कभी प्रधानमंत्री के मुद्दे पर चुनाव न हुए हों, लेकिन इतने जोर-शोर से पहली बार यह हो रहा है। भारतीय जनता पार्टी ने प्रधानमंत्री पद की उम्मीदवारी को लेकर ऐसा माहौल बनाया है

जैसा माहौल अब तक शपथ ग्रहण समारोह के पहले हुआ करता था। उत्साह, युयुत्सा और उत्तेजना की पराकाष्ठा ऐसी कि जनमत के अभिव्यक्त होने देने के प्रति कोई सम्मान ही नहीं बच पा रहा है। प्रधानमंत्री पद के घोषित उम्मीदवार युद्धंदेहि की मुद्रा अपनाते हुए, पूरे देश में घूम-घूम कर भाषणों और घोषणाओं का निर्लज्ज तुमार इस तरह बाँध रहे हैं, जैसे किसी एक दल के द्वारा प्रधानमंत्री के घोषित उम्मीदवार नहीं, बल्कि खुद प्रधानमंत्री ही राष्ट्र को संबोधित कर रहे हों। सामूहिक नेतृत्व या संसदीय दल जैसी बातें निरर्थक हो गई प्रतीत होती हैं। यह सही है कि भारतीय जनतंत्र में व्यक्ति का महत्त्व हमेशा रहा है, लेकिन व्यक्ति ही सबकुछ है इसका इतना जबर्दस्त खुल्लम-खुल्ला आभास पहली बार दिया जा रहा है। भारतीय जनता पार्टी के प्रधानमंत्री पद के घोषित उम्मीदवार नरेन्द्र मोदी गुजरात नरसंहार और अपनी राजनीतिक अकड़ की पृष्ठभूमि को अपनी आभासी विजयी मुद्रा से ढकते हुए देश के सामने उपस्थित कठोर सवालों को बे-असर बना रहे हैं।

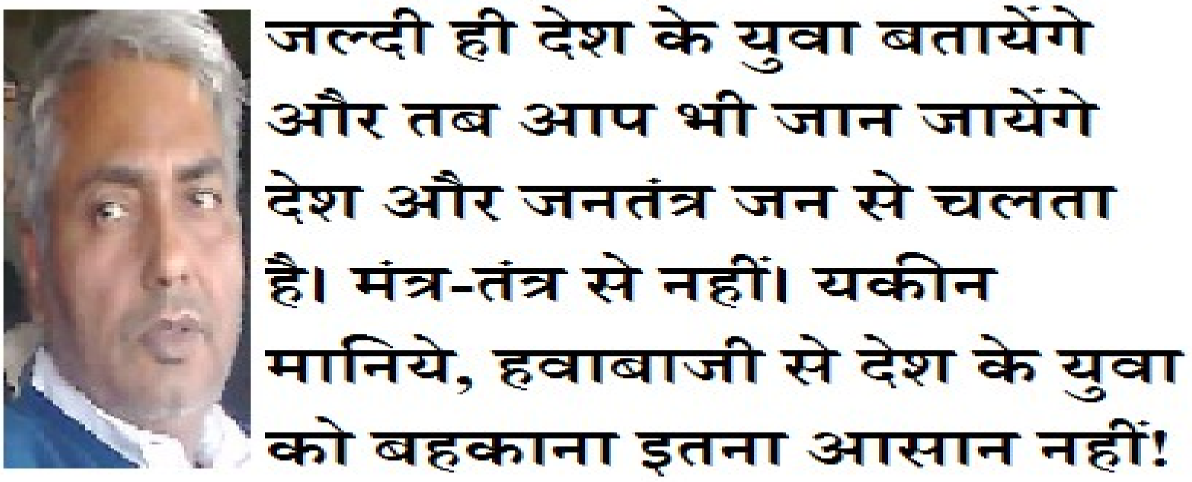

दूसरी तरफ, यह माहौल काँग्रेस के लिए भी राजनीतिक रूप से मुफीद ही है। क्योंकि, इस माहौल के कारण भ्रष्टाचार और आर्थिक मोर्चे पर काँग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन में चल रही डॉ मनमोहन सिंह सरकार की गंभीर नाकामियों को ढक लेने की भरपूर गुंजाइश बन रही है। सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती हुई महँगाई, शिक्षा, स्वास्थ्य, महिलाओं तथा कमजोर नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा, नागरिक जीवन की आंतरिक व्यवस्था जैसे गंभीर मुद्दों पर बात करने का अवसर लगातार समाप्त होता जा रहा है। आपराधिक पृष्ठभूमि वाले जनप्रतिनिधियों के बारे में सुप्रीम कोर्ट के फैसले को निष्प्रभावी बनानेवाले अध्यादेश और विधेयक को राहुल गाँधी के द्वारा अमान्य किये जाने के बाद सरकार का रवैया जिस तरह से सामने आया वह कुल मिलाकर भूल सुधार होने के बावजूद कुछ ऐसे सवाल भी छोड़ गया जिससे लोग हतप्रभ हैं। एक व्यक्ति की छवि चमकाने, उनकी समझ और पकड़ को झलकाने के लिए सरकार के सामूहिक निर्णय की पद्धति की संसदीय मार्यादा को इस तरह से नंगा किया जाना कोई शुभ संकेत नहीं है।
एक राज्य में प्रभाव रखनेवाले दल अखिल भारतीय दलों की राजनीतिक गतिविधियों को अपने ढंग से तौल रहे हैं। पिछले कई आम चुनावों के बाद सरकार चाहे जिस बड़े दल के नेतृत्व में गठित हुई हो, हर बार इनकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण रही है। इस बार, चुनाव नतीजों के सामने आने तक ऐसे दल अपनी स्थिति पर ही टिके रहेंगे। चुनाव के मैदान में आपसी समझऔर समझौता चाहे जो हो, औपचारिक रूप से भाजपा या काँग्रेस के नेतृत्ववाले किसी गठबंधन के साथ ये नहीं होंगे। ऐसी पूरी संभावना दिखती है कि ये दल अपने-अपने समीकरणों को दुरुस्त रखते हुए जिस भी गठबंधन के साथ हैं, वहाँ बने तो रहेंगे लेकिन इस राजनीतिक बोध के साथ कि सहयोगी हैं, अनुयायी नहीं। यानी, सत्ता की राजनीति में स्थायी दोस्त या स्थायी दुश्मन के बोध से मुक्त होकर राजनीतिक जरूरत के हिसाब से बेहिचक अपना पाला बदलने के लिए पूरी तरह से तैयार! स्वाभाविक है कि सरकार बनने की स्थिति साफ होगी नतीजे आने के बाद।

अभी तो बहुत सारे खेल होंगे। अभी चुनावी घोषणापत्र जारी किया जाना है। ऐसे मुद्दे भी सामने आ सकते हैं जो वोटरों के रुझान में थोड़ा-बहुत बदलाव ले आयें। फिर भी, एक बात तय है कि आपराधिक पृष्ठभूमि से मुक्त उम्मीदवारों की जो माँग भ्रष्टाचार विरोधी अन्ना आंदोलन से उभर कर जनभावना में परिणत हो गई है। कतिपय अदालती फैसलों तथा चुनाव में नकारात्मक वोट के विकल्प के लागू होने का प्रत्यक्ष से अधिक अप्रत्यक्ष असर अभी नवंबर-दिसंबर 2013 में होनेवाले पाँच राज्यों के चुनाव में तो होगा ही, 2014 के लोक सभा के आम चुनाव में भी होगा। राजनीतिक दल अपने उम्मीदवारों की चयन प्रक्रिया में उम्मीदवारों के चुनाव जीत सकने की संभावना का आकलन करते समय अपनी जीत को टिकाये रख पाने की उम्मीदवारों की योग्यता का भी आकलन जरूर करेंगे। आपराधिक पृष्ठभूमिवाले दलीय या नर्दलीय उम्मीदवार खुद भी अपनी जीत के बाद भी अयोग्य ठहरा दिये जाने के जोखिम के कारण चुनावी प्रक्रिया में होनेवाले भारी खर्च का जोखिम उठाने से बचेंगे। यह ठीक है कि सरकार बनाने की स्थिति साफ होगी नतीजे आने के बाद, लेकिन जश्न का माहौल बिल्कुल साफ दिख रहा है। राजनीतिक विशलेषण से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर अनुमान लगाने से एक भिन्न प्रकार की ही तस्वीर उभर कर सामने आ रही है। भारतीय जनता पार्टी नरेन्द्र मोदी को प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित कर चुकी है। इसके बहुत ही क्षीण आसार हैं कि आम-चुनाव के नतीजों की घोषणा के बाद भारतीय जनता पार्टी अकेले बहुमत में आ जाये। सबसे बड़ा दल बनकर उभर सकने की संभावना भी बहुत ही क्षीण है। यह सच है कि मँहगाई, भ्रष्टाचार से त्रस्त जनता काँग्रेस के नेतृत्व में चल रही डॉ. मनमोहन सरकार से बहुत खुश नहीं है, लेकिन इन्हीं मुद्दों पर भारतीय जनता पार्टी से भी उसकी कोई बहुत बड़ी उम्मीद नहीं है। दूसरी तरफ, आक्रामक हिंदुत्ववादी तेवर को ढीला करने पर वोटरों का एक वर्ग मतदान के पहले ही मोहभंग की स्थिति में पहुँच जायेगा। भारतीय जनता पार्टी एक राजनीतिक पार्टी के रूप में यह जानती है कि आक्रामक हिंदुत्ववादी तेवर चुनाव के पहले के समीकरण को जो क्षति पहुँचाये लेकिन नतीजों के जाहिर होने के बाद वह अलग-थलग पड़ जायेगी। देवालय-शौचालय प्रसंग से साफ है कि नरेन्द्र मोदी भी इस बात को जानते और मानते हैं। लेकिन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने मोदी पर अपना दाँव इसलिए लगाया है कि उसे अटलबिहारी बाजपेयी के नेतृत्ववाली केंद्र सरकार या रमण सिंह और शिवराज सिंह चौहान के नेतृत्ववाली राज्य सरकारों जैसी नहीं बल्कि गुजरात मॉडलवाली नरेन्द्र मोदी सरकार जैसी केंद्र सरकार चाहिए। ऐसी केंद्र सरकार जो आक्रामक हिंदुत्ववादी एजेंडे को लागू कर सके। नहीं तो, लालकृष्ण आडवानी क्या बुरे थे! मोदी के सामने आक्रामक हिंदुत्ववादी तेवर को अपनाये रखने या छोड़कर आगे बढ़ने का भारी अंतर्घाती संकट है। आक्रामक हिंदुत्ववादी तेवर छोड़ते हैं तो चुनाव के पहले ही समर्थकों में शिथिलता आ जायेगी जिसकी भरपाई करने के लिए उनके पास मुट्ठी भर समर्थक तो हो सकते हैं, लेकिन कोई मेकेनिज्म नहीं है। आक्रामक हिंदुत्ववादी तेवर नहीं छोड़ते हैं तो चुनाव के नतीजे आने के बाद प्रधानमंत्री के रूप में उनकी स्वीकार्यता के समीकरण गड़बड़ायेंगे। भारतीय जनता पार्टी के ही किसी दूसरे आदमी के नाम पर मोदी जैसी अकड़वाला आदमी कभी तैयार नहीं होगा। यह भी साफ है कि बहुमत होने के पुख्ता प्रमाण के बिना राष्ट्रपति सरकार गठन के लिए आमंत्रित करेंगे नहीं। नतीजा यह कि भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में सरकार बनने की संभावना बहुत क्षीण है।

चुनाव बदल सकता है देश का भाग्य : रामदेव

क्या कहते हैं बाबाजी! कल तक तो कहते थे कि भगवान ही भाग्य बदलते हैं, और वह भी वाया बाबा! और अब चुनाव!! चुनाव अधिक-से-अधिक दल बदलता है। चुनाव न दिल बदलता है, न भाग्य!! रंग और चोला बदलने जैसा आसान कहाँ है वह बदलना जो आप चाहते हैं!! यह भारत है! भारत के लोग सुनते सब की हैं, करते अपने मन की हैं..

काँग्रेस ने प्रधानमंत्री पद का कोई उम्मीदवार घोषित नहीं किया है। उसे ऐसा करने की जरूरत भी नहीं है। तीसरी बार डॉ मनमोहन सिंह के प्रधानमंत्री बनने के आसार बिल्कुल ही नहीं हैं। भारतीय जनता पार्टी से पाँच-दस सीट अधिक भले ही काँग्रेस जीत ले जाये लेकिन अकेले दम पर सरकार बनाने की बात इसके लिए भी उतनी ही अकल्पनीय है। ऐसे में काँग्रेस उन सहयोगियों की तलाश करेगी जो राहुल गाँधी के नाम पर तैयार हों। काँग्रेस राहुल गाँधी की छवि चाहे जितना चमकाये लेकिन उनके नाम पर सहयोगियों को जुटाना काँग्रेस के लिए बहुत टेढ़ी खीर साबित होगा। नेहरू-गाँधी परिवार की काँग्रेस में चाहे जितनी भी धाक हो, काँग्रेस के बाहर के राजनीतिक दल राहुल गाँधी के नाम पर शायद ही अपना समर्थन दें। अपने अप्रासंगिक होते चले जाने के खतरे से बचने के लिए पचमढ़ी अधिवेशन के फैसले को दरकिनार करते हुए भले ही गठबंधन की राजनीतिक बाध्यताओं को स्वीकारना काँग्रेस ने सीख लिया हो लेकिन इसके बावजूद, नेहरू-गाँधी परिवार के किसी सदस्य को गठबंधन की राजनीतिक संभावनाओं के द्वारा प्रधानमंत्री के रूप में सहज ही स्वीकारना आसान नहीं लगता है। फिर क्या उपाय है! कठिन मगर एक संभावना तो यही दिखती है कि काँग्रेस एक बार फिर सत्ता की राजनीति में चरण सिंह, चंद्रशेखर प्रयोग को दुहराने की तरफ बढ़ेगी। ऐसे में मुलायम सिंह, नीतीश कुमार, मायावती जैसे नेताओं की बढ़ी हुई महत्त्वाकांक्षाएँ काँग्रेस के काम आ सकती हैं। मुलायम सिंह और मायावती की महत्त्वाकांक्षाएँ अगर परस्पर टकराती हैं तो नीतीश कुमार का रास्ता साफ हो सकता है, अन्यथा मुलायम सिंह संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के अगले प्रधानमंत्री हो सकते हैं। यह सब अनुमान ही है! अभी तो पाँच राज्यों में चुनाव होने हैं, घोषित कार्यक्रम के अनुसार 8 दिसंबर को परिणाम घोषित होंगे इससे भी मतदाताओं के रुझान का कुछ पता चलेगा। इस रुझान को चुनावी प्रचार में लगाने और भुनाने की कोशिश होगी। इसके थोड़े-बहुत असर से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। राष्ट्र के सिकुड़ते जाने और बाजार के फैलते जाने के इस संक्रमणकाल में इस आम चुनाव में जनता का फैसला बहुत ही महत्त्वपूर्ण साबित होनेवाला है। जनता का फैसला जो भी हो उसे सम्मानपूर्वक स्वीकारना ही जनतंत्र की बुनियादी माँग है।

अतीत बताता है कि नीयत अगर साफ हो तो नाम का उलटा जप करनेवाला डाकू रत्नाकर कवि बाल्मीकि बन जाता है और वर्तमान बताता है कि नीयत साफ न हो तो शुद्ध उच्चारण के साथ नाम का सीधा जप करनेवाला भी डाकू बनकर दनदनाता फिरता है।